धर्म रसायन को पीने से अमर होता है

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि॥४६॥

जरा मरण भय हरण हित, करो धर्म गुणवान।
अजरामर पद प्राप्ति हित, कर धर्मोषधि पान॥

अन्वयार्थ – (जिय) हे जीव! **(जइ जर-मरण करालियउ)** यदि तू जरा व मरण के दुःखों से भयभीत है **(तो धम्म करेहि)** तो धर्म कर **(तुहुँ धम्मरसायण पियहि)** तू धर्म रसायन को पी **(जिम अजरामर होहि)** जिससे तू अजर-अमर हो जावे।

वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल ६, शुक्रवार, दिनाङ्क २४-०६-१९६६
गाथा ४६ से ४९ प्रवचन नं. १७

योगीन्द्रदेव मुनि, दिगम्बर मुनि हुए। उन्होंने यह योगसार बनाया। योगसार का अर्थ – आत्मा का स्वभाव शुद्ध और आनन्द है, उसमें एकाग्रता का होने का नाम योग कहा जाता है। उसमें सार अर्थात् निश्चय स्वभाव की स्थिरता (होवे), उसे योगसार कहते हैं। ४५ गाथा हो गयी है।

४६ – **धर्म रसायन को पीने से अमर होता है।** धर्मरूपी औषध पीने से अमर होता है। इस गाथा में ऐसा कहते हैं।

जइ जर-मरण-करालियउ, तो जिय धम्म करेहि।
धम्म-रसायणु पियहि तुहुँ, जिम अजरामर होहि॥४६॥

हे जीव! यदि तू जरा और मरण के दुःखों से भयभीत है.... जरा-मरण और

दुनिया के संयोग का दुःख – ऐसे दुःखों से यदि तू भयभीत है, चौरासी के अवतार से (भयभीत है)। **तो धम्म करेहि – धर्म कर।** यह धर्म कर अर्थात् धर्म क्या? यह आता है अन्दर, थोड़ा अर्थ किया है। **धर्म उसे ही कहते हैं कि जो संसार के दुःखों से निकालकर मोक्ष के परमपद में धारण करे। वह धर्म, रत्नत्रयस्वरूप है।** सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। ऐसे आत्मा की अन्तर में सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और रमणता (होवे), उसे यहाँ धर्म कहा गया है। समझ में आया? **कर धर्मोषधि पान** – ऐसा है न? **तू धर्मरसायन का पान कर।** धर्मरूपी औषधि भी रसायन अर्थात् उत्तम औषधि। **जिससे तू अजर-अमर हो जाएगा।** जिससे तू अजर और अमर हो जाएगा। जरा और मरणरहित हो जाएगा.... परन्तु धर्म अर्थात् क्या?

पहले ऐसा कहा है कि मनुष्य को यह जन्म-जरा-मरण के दुःख पहले भासित होना चाहिए। समझ में आया? **जरा व मरण के भयानक दुःख हैं। जब जरा आ जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है, अपने शरीर की सेवा स्वयं करने को असमर्थ हो जाता है, इन्द्रियों की शक्ति घट जाती है, आँख की ज्योति कम हो जाती है।** इत्यादि।

मुमुक्षु – सब अनुकूल हो तब?

उत्तर – अनुकूल नहीं, धूल में भी अनुकूल नहीं। अनुकूल कब था? बाहर के इन्द्रिय आदि मेरे, और पद आदि अनुकूल.... यहाँ तो कहते हैं कि प्रतिकूल हो या अनुकूल, उस बाह्य सामग्री की रुचि छोड़ दे। समझ में आया यहाँ?

यहाँ तो तुझे चार गति में भटकने का भय लगा होवे तो धर्म-औषधि का पान कर – ऐसा कहते हैं। जैसे, बाहर के रोग को मिटाने को औषध है; वैसे ही जन्म-जरा-मरण के रोग को मिटाने के लिए आत्मा में औषध है। आत्मा के पास है। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अनाकुल आनन्दस्वरूप है, उसका अन्तर में अनुभव करना। आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुसरण करके अन्तर में उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणतारूप अनुभव करना, यह जन्म-जरा-मरण का नाश करने की औषधि उपाय है। यह एक औषधि है। समझ में आया?

लोगों ने दूसरे औषध ढूंढ़े कि भई! इस रोग पर यह औषध.... परन्तु किसी ने जन्म-मरण की औषधि ढूँढ़ी ? है ?

मुमुक्षु – वीतरागदेव ने दिया।

उत्तर – वीतराग सर्वज्ञदेव भी कहते हैं, वही कहते हैं। समस्त रोगों की दवा (शोधकर) इस रोग पर यह दवा और इस रोग पर यह दवा.... परन्तु इस चौरासी लाख के जन्म-मरण, जरा में भटकता है, उसकी दवा किसी ने खोजी ? वह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव तीन काल-तीन लोक के ज्ञाता, वीतराग कहते हैं कि उसके लिए धर्म रसायन औषध है। धर्मरूपी उत्तम रसायन है। वह धर्म किसे कहना ? समझ में आया ? देखो! नीचे है।

रत्नत्रय के भाव से ही नये कर्मों का संवर होता है और पुराने कर्मों की अविपाक निर्जरा होती है। वह धर्म रत्नत्रयस्वरूप है। देह की क्रिया, धर्म नहीं है, आत्मा में कोई दया, दान, व्रत का भाव हो, वह भी धर्म नहीं है। समझ में आया ? आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अन्तर में अनुभव करना, आत्मा पवित्र अनन्त गुण का धाम आत्मा है, उसमें विकार जितना दिखता है, वह आत्मा नहीं – ऐसे आत्मा में अन्तर्मुख होकर आनन्द की शान्ति का अनुभव करना, वही एक जन्म, जरा, मरण को मिटाने की औषध है। कहो, समझ में आया ?

रत्नत्रय निश्चय से एक आत्मिक शुद्धभाव है.... रत्नत्रय (है वह) मोक्ष प्राप्त करने के लिए तीन रत्न हैं। यह तीन रत्न अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा पूर्णानन्द है, उसमें अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा होने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। राग के अवलम्बन बिना चैतन्य ब्रह्म भगवान आत्मा की अन्तर अभेद निर्विकल्प प्रतीति होने को सम्यग्दर्शनरूपी जन्म, जरा, मरण को मिटाने का औषध कहते हैं। उस आत्मा का ज्ञान कि यह परमानन्दमूर्ति आत्मा है – ऐसे आत्मा का ज्ञान; आत्मा का ज्ञान दूसरी चीज का नहीं – वह जन्म, जरा, मरण रोग को मिटाने का औषध एक महा उपाय है और फिर स्वरूप में स्थिर होना। जो आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द, जो श्रद्धा -ज्ञान में लिया हो, उसमें अन्तर में स्थिर होना, रमना, जमना,

आनन्द का विशेष अनुभव करना – इसका नाम चारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह धर्म-औषध पान शुद्धभाव है।

आत्मतल्लीनता है.... अनादि की पुण्य-पाप के विकारीभाव की तल्लीनता है वह जन्म, मरण के रोग को उत्पन्न करने का कारण है। आत्मा में होनेवाले परलक्ष्यी शुभाशुभभाव – दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभ (भाव) और हिंसा, झूठ आदि अशुभ(भाव) में लीनता, वह जन्म, जरा, मरण को बढ़ाने का वह रोग है। जन्म, जरा, मरण को मिटाने की औषध, उस चैतन्य भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति में लीनता, उसमें एकाग्रता (करना है)। पहले आत्मा को पहचाने, पहचानकर श्रद्धा करे, जाने और फिर उसमें लीनता करे, वह लीनता आत्मिकभाव है।

आत्मलीनता है, वह **स्वसंवेदन है....** समझ में आया? लो! गुरु से मिले – ऐसा नहीं यह कहते हैं। स्व-संवेदन हुआ, तब गुरु से मिला ऐसा कहने में आया? स्व-संवेदन – आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा है, अनादि-अनन्त सद्चिदानन्दस्वरूप है; यह देह तो मिट्टी-जड़ है, वाणी जड़ है, कर्म जड़ है, पुण्य-पाप के भाव होते हैं वह विकार, दोष और दुःख है। इनसे रहित आत्मा का स्वभाव, उसका अपना स्वसंवेदन (अर्थात्) ज्ञान, ज्ञान से ज्ञान को जाने, ज्ञान, ज्ञान से आत्मा को जाने; ज्ञान, ज्ञान से आत्मा का वेदन करे; ज्ञान, ज्ञान से आत्मा में स्थिर हो, वह स्वसंवेदन एक ही जन्म, जरा, मरण को मिटाने का उपाय – रसायन है। कहो, समझ में आया? स्वानुभव है.... अनुभव है। भगवान आत्मा अनादि का पुण्य और पाप, शुभाशुभराग का अनुभव करता है, वह अनुभव तो पर विकार का (अनुभव है)। वह तो चार गति के भटकने का मूल है। भगवान आत्मा का जो अनुभव, वही मोक्ष का कारण है और रोग – जन्म, जरा, मरण को मिटाने का एक रसायन है। रसायन अर्थात् उत्तम औषधि। कहो समझ में आया? डॉक्टर और वैद्य नहीं देते? उत्तम रसायन या भस्म या.... देते हैं न कुछ? पुडिया, हैं? वह ऊँची – कीमती होती है। यह भी ऊँची कीमती रसायन है, कहते हैं। औषध में भी ऊँची (औषध को) रसायन कहते हैं।

मुमुक्षु – कीमती में मात्रा अधिक रहती होगी।

उत्तर – मात्रा उसमें अधिक है। समझने के लिए। रोग तो स्वयमेव मिटता है। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। दृष्टान्त में से कहीं पूरा सिद्धान्त नहीं निकलता, आंशिक निकलता है।

जैसे वह रसायन रोग को मिटाने का कारण है, वैसे भगवान आत्मा सदचिदानन्द प्रभु का अन्तर में एकाकार होकर अनुभव, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना, वह एक ही जन्म-जरा-मरण को मिटाने का रसायन है। वह एक ही औषध है। श्रीमद् में आता है न? श्रीमद् में.... आत्मसिद्धि में

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान॥

कहो, समझ में आया? आत्मा राग में, पुण्य में, शरीर में, पर में है – यह मान्यता महाभ्रम है।

पुरुषार्थ.... कल आया था न? समस्त वकील को मूर्ख सिद्ध किया था परन्तु ऐसा लेख लिखा था... गप्प मारा था। आहा...हा...! सब वकील मूर्ख हों – ऐसा नहीं। वकील कर्तारूप हो तो मूर्ख हो, कहो समझ में आया? यह तो ऐसा लिखा है कि मूर्ख के जाम जैसा लिखा है। मनुष्य पुरुषार्थ से बड़े-बड़े बाघ को वश करता है – ऐसे पानी पर बड़े स्टीमर चलावें। जैसे लड़का खेल खेलता है, उसमें पानी में चलाता है, इतना पुरुषार्थ! आत्मा पर का कर नहीं सकता होगा? धूल में भी नहीं करता हो, हाँ! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! तेरा पुरुषार्थ या तो विकार में चलता है और या पुरुषार्थ स्वभाव में चलता है; पर में तेरा पुरुषार्थ जरा भी काम नहीं करता। आहा...हा...! धूल में भी नहीं करता। एक आँख की पलक झपक सकता है? ऐसा हो जाता है, धूल में भी कुछ नहीं लेता। सब बहुत लिया है, इसमें.... बिजली, आकाश में से पकड़कर पानी में उतारी, ऐसा किया.... बिजली कहीं आकाश में से पकड़ी होगी? यह बिजली... बिजली होती है न?

वह अलग, वह उतारी हुई नहीं। यह तो पंखा चलाया, पानी को बाहर निकालने को यह बिजली... ऐसा कहते हैं, यह तो पता है, इसकी कहाँ बात है, धूल भी कुछ नहीं

करता। आत्मा करे क्या? अपनी सत्ता में विकार करे और या आत्मा का अनुभव करके मुक्ति करे। बाकी पर का अणुमात्र भी नहीं बदल सकता है। आहा...हा...! बड़ा मानधाता... वह नहीं था एक बड़ा? रामो... रामो... कहता था न? 'गामा!' ऐसा उसका बड़ा शरीर लट्ठ जैसा, पूरे हिन्दुस्तान में क्या पूरे देश में बड़ा योद्धा कहलाता था, वह मरते समय ऐ...ऐ... (हो गया)। मक्खी बैठे तो हाथ (उठा नहीं सकता), वह तो जड़ है। जड़ में आत्मा क्या कर सकता है? आत्मा या दीनता करे और या उग्रता पुरुषार्थ करे, उलटा या सुलटा। समझ में आया?

मुमुक्षु – परन्तु शरीर अच्छा होवे तो....

उत्तर – धूल में अच्छा शरीर, कहना किसे शरीर? यह तो मिट्टी है। शरीर तो मिट्टी है। यह निरोगता होवे तो उसकी दशा, रोग होवे तो उसकी दशा... आत्मा को उसके कारण कुछ रुकता है, इस बात में जरा भी दम नहीं है। शरीर में रोग हो, वह जड़ में है, उसमें आत्मा को क्या आया? समझ में आया?

यहाँ तो 'आत्मभ्रान्तिसम रोग नहीं...' आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है – ऐसा न मानकर, उसे रागवाला और शरीरवाला और परवाला मानना – ऐसा एक महारोग मिथ्यात्व का इसे लगा है। आहा...हा...! 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान' इसे क्या रोग है? यह बतलानेवाले ज्ञानी हैं परन्तु सुजान, हाँ! भलीभाँति जाननेवाले, सम्यक्ज्ञानी की बात है; और उनकी आज्ञा है कि इस प्रकार नहीं मानना – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को नहीं मानना यह पथ्य है। 'औषध विचार ध्यान' और उसका औषध विचार और ध्यान है। कहो! विचार और ध्यान उसके औषध हैं। कहो, समझ में आया?

देखो! **जहाँ अपने आत्मा के ही शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान है, ज्ञान है, और उसमें ही स्थिरता है, उसे ही आत्मदर्शन कहते हैं।** उसे आत्मदर्शन कहते हैं। भगवान आत्मा परसन्मुख की उपयोग दशा को बदलकर और अपने स्वभाव के अन्तर में उपयोगदशा को जोड़े.... योगसार है न? उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं। **वही एक धर्म रसायन है।** लो, मांगीरामजी! कितना गुजराती सीखकर आये? समझ में आया? जवाब दिया.... कहो समझ में आया? एक धर्म रसायन जो **अमृतरस का पान है। जिसका पान**

करने से स्वाधीनरूप से परमानन्द का लाभ होता है। आहा...हा... ! परन्तु इसे सूझ नहीं पड़ती। यह भगवान स्वयं समीप है। समझ में आया ?

और **शुद्धोपयोग ही धर्म है।** नीचे शब्द है, क्या कहा ? आत्मा में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना, काम, क्रोध, ये पापपरिणाम वह अशुभभाव है; दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप आदि शुभभाव हैं, पुण्यभाव है, वह धर्म नहीं है; धर्म को आत्मा में इन शुभ और अशुभभाव से हटकर अन्तर आत्मा के आनन्द में शुद्धभाव प्रगट करना, पुण्य-पाप के भावरहित – ऐसे शुद्धभाव को भगवान, धर्म कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

कषाय के उदयसहित शुभोपयोग धर्म नहीं है। देखो ! इसमें तो बराबर ठीक लगता है। निमित्त का आवे तब जरा दृष्टिकोण बदल जाता है। कषाय का उदय, शुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठता है, वह तो राग है, वह धर्म नहीं है। आहा...हा... ! वह तो शुभ उपयोग है, पुण्य-बन्ध का कारण है। शुद्ध उपयोग – रागरहित आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आत्मा का शुद्ध व्यापार, उसे यहाँ शुद्धयोग कहा जाता है, उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। समझ में आया ? फिर (लिया है कि) अशुभ से बचने को शुभ करना पड़ता है। **परन्तु उसे बन्ध का कारण मानना चाहिए। मोक्ष का उपाय एकमात्र स्वानुभवरूप शुद्धोपयोग है।** उसके बिना कोई मोक्ष का उपाय एक भी नहीं है। कहो, समझ में आया ?

'वृहद् सामायिक' का दृष्टान्त दिया है। **अब तू शुद्ध आत्मज्ञान प्राप्त करके उन विषय-कषायों का पूर्णरूप से नाश कर डाल, विद्वान् लोग अवसर मिलने पर शत्रुओं को मारे बिना छोड़ते नहीं हैं।** हे आत्मा ! तुझे अभी अवसर मनुष्य देह में अवसर मिला है। आत्मा का भान करने का अवसर आया है। यह विकाररूपी शत्रु को नाश करने का तेरा काल है। आहा...हा... ! अरे ! चौरासी के अवतार तुझे भटकते हुए मनुष्यपना, उसमें इन विकाररूपी शत्रुओं को नाश करने का तेरा अवसर है और विद्वान् अवसर को पहचान कर शत्रु को मार डालते हैं। अभी अपना अवसर है। समझ में आया ? फिर धर्म रसायन की बात की है। ठीक !

☆ ★ ☆

बाह्य क्रिया में धर्म नहीं है

धम्मु ण पढ़ियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ॥४७॥

शास्त्र पढ़े मठ में रहे, शिर के लुँचे केश।
धरे वेश मुनि जनन का, धर्म न पाये लेश॥

अन्वयार्थ – (पढियइँ धम्मु ण होइ) शास्त्रों के पढ़ने मात्र से धर्म नहीं हो जाता **(पोत्थापिच्छियइँ धम्मु ण)** पुस्तक व पीछी रखनेमात्र से धर्म नहीं होता **(मढिय -पएसि धम्मु ण)** किसी मठ में रहने से धर्म नहीं होता **(मत्था-लुचियइँ धम्मु ण)** केशलोंच करने से धर्म नहीं होता।

☆ ★ ☆

४७। **बाह्य क्रिया में धर्म नहीं है।** ४७ श्लोक

धम्मु ण पढ़ियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्था-लुंचियइँ॥४७॥

शास्त्र पढ़नेमात्र से धर्म नहीं हो जाता। शास्त्र पढ़-पढ़कर बढ़ा पण्डित हुआ हो, इसलिए धर्म हो जाये – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? **'पोत्था-पिच्छिय' यह पुस्तक और पिच्छी रखनेमात्र से धर्म नहीं हो जाता।** नग्न मुनि हो गया और पिच्छी रखी और एक पुस्तक रखी, वह कहीं धर्म नहीं है। देखो! यह योगीन्द्रदेव स्वयं दिगम्बर मुनि हैं, जंगलवासी आचार्य हैं, आत्मध्यान में मस्त हैं, वे कहते हैं कि तेरी मोरपिच्छी या पुस्तक से कहीं धर्म नहीं होता है।

किसी मठ में रहने से धर्म नहीं होता। एकान्त में जाकर वन में रहे, किसी मठ में रहे.... वन में और मठ में रहे उसमें क्या हुआ? बहुत से चकवे उसमें रहते हैं। समझ में आया? हैं? मठ और वन सब एक ही है, उसमें क्या? धर्म का पता नहीं, वहाँ मठ में रहे या वन में रहे या घर में रहे... समझ में आया? और आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध का

भान करके चाहे तो वन में रहे या चाहे तो घर में रहे.... समझ में आया ? आत्मा के भान बिना, कहते हैं किसी मठ में रहने से धर्म नहीं होता।

ऐसा **केशलोंच करने से भी धर्म नहीं होता। 'मत्था-लुचियइँ'** सिर का लोंच करते हैं न, छह-छह महीने में ? उससे कहीं धर्म नहीं है। लोगों को ऐसा हो जाता है.... आहा...हा... ! वह तो जड़ की क्रिया है; वह कहीं आत्मा की क्रिया है ही नहीं। उसमें कुछ राग मन्द होवे और सहनशीलता करे तो वह पुण्यभाव है। अन्दर आत्मा के आनन्द के भान बिना ऐसा सिर मुँड़ाने पर भी कहीं धर्म-वर्म है नहीं। कहो, समझ में आया ? आहा...हा... !

जिस धर्म से जन्म, जरा, मरण का दुःख मिटे, कर्मों का क्षय हो, यह जीव स्वाभाविक दशा को प्राप्त करके अजर-अमर हो जाये, वह धर्म.... कहलाता है। वह **आत्मा का निजस्वभाव है।** धर्म है, लो ! **वही निश्चय रत्नत्रयमय धर्म, स्वानुभव अथवा शुद्धोपयोग की भूमिका को प्राप्त करेगा।** लो, अपनी श्रद्धा करेगा, अपना ज्ञान करेगा, एकाग्रता करेगा, वह सच्चे शुद्धोपयोग की प्राप्ति करेगा।

जो कोई उस तत्त्व को भलीभाँति न समझे.... भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा, जगत् का साक्षी, जगत् की चक्षु, दुनिया के दृश्य को देखनेवाला, यह ज्ञेय का ज्ञाता – ऐसा भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा अनुभव में न ले और इसके अतिरिक्त **बाह्य क्रियामात्र व्यवहार ही करे और माने कि मैं धर्म का साधन कर रहा हूँ....** तो वह धर्म साधन है नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु – क्षेत्र विशुद्धि....

उत्तर – क्षेत्र विशुद्धि भी नहीं। क्षेत्र विशुद्धि किसकी ? (बीज) बोये तब क्षेत्र विशुद्धि कहलाये न ? बोये बिना (क्या) ? 'खस' में रहते, नहीं वे ? कुम्हार नहीं ? गुजर गये। रायचन्द्रजी ! बहुत इतने-इतने तक खेत को साफ करते (परन्तु) बोये नहीं, तो बोये बिना उगता होगा ? क्या कहा उसका नाम ? रायचन्द्रजी ! अपने थे न यहाँ ? जीवनलालजी के साथ, वे बाद में साधु हुए थे। वे खेत में बहुत साफ करते थे। इतना-इतना खोद कर अन्दर से बौर और काँटे निकालते। बोने का समय आवे तब बोते नहीं। वे फिर ऐसी लाईन

में चले गये, कुछ सूझे नहीं, धर्म की लगन अवश्य; करे ऐसी मेहनत और समय आवे तब बोये नहीं – ऐसी वहाँ उनकी छाप थी।

मुमुक्षु – घासफूस तो हुआ।

उत्तर – घासफूस तो मुफ्त भी होगा। घासफूस होने में क्या है ?

मुमुक्षु – दृष्टान्त भी ठीक मिल गया।

उत्तर – नहीं, नहीं, दृष्टान्त है यह। उसे भी ऐसी लाईन.... ऐसा फिर उसे भाव अवश्य, दीक्षा लेना, दीक्षा लेना – ऐसा अवश्य। करे तब करे और फिर बैठ जाये, कुछ सूझ नहीं पड़े ऐसे खेत साफ करे परन्तु बीज बोये बिना उगे कहाँ से ? बीज बिना वृक्ष का अंकुर फूटता होगा ?

इसी तरह भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु का अनुभव किये बिना मोक्ष का फल कहीं पकता नहीं है। बाहर का क्रियाकाण्ड करके मर जाये – दया पालो, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, और लाखों-करोड़ों का दान करे.... समझ में आया ? लाखों-करोड़ों का दान करे और लाख-करोड़ मन्दिर बनाये.... हराम... धर्म हो उसमें तो। शुभभाव हो, शुभभाव-पुण्य हो। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं न, देखो न ! सब कठोर भाषा ली है। (यहाँ) **कहा है कि ग्रन्थ पढ़ने से ही धर्म नहीं होता, ग्रन्थ का पठन पाठन इसलिए उपयोगी है कि जगत् के पदार्थ....** जानकर फिर आत्मा का अनुभव करना। समझ में आया ? **यदि शुद्धात्मा का लाभ न करे, केवल शास्त्रों का अभ्यासी महान विद्वान और वक्ता होकर धर्मात्मा होने का अभिमान करे....** शुद्धात्मा भगवान परमानन्द की मूर्ति का अनुभव न हो, सम्यग्दर्शन नहीं, उसका अनुभव नहीं, केवल शास्त्रों का पाठी है.... अकेला शास्त्र पढ़े, दुनिया में महान विद्वान कहलाये, वक्ता – फिर पाँच-पाँच लाख लोगों में भाषण दे... **धर्मात्मा होने का अभिमान करे तो वह सब मिथ्या है।** वह कोई धर्मात्मापना नहीं है। आहा...हा... ! है ?

मुमुक्षु – ऐसा तो अनादि से चला आता है।

उत्तर – अनादि से ऐसा का ऐसा चला आता है।

धर्म तो आत्मा का निर्विकल्प अनुभव करना, वह धर्म है। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का अन्दर में वेदन करे, उसका नाम धर्म है। उस धर्म के बिना बाहर के शास्त्रों के अध्ययन में विद्वत्ता धारण कर अभिमान करे (तो वह) मिथ्या है।

इसी प्रकार कोई बहुत शास्त्रों का संग्रह करे.... भरो पुस्तकें पाँच-दस लाख बड़ी... समझे न? जैसे दाने का संग्रह करते हैं न? वैसे ही यह पुस्तकों का संग्रह करे। कहो, समझ में आया? **पिच्छी रखकर साधु या क्षुल्लक श्रावक हो जाये....** लो! बहुत पुस्तक रखे, पिच्छी रखे... समझ में आया? **केशलोंच करे, एकान्त मठ में या गुफा में बैठे परन्तु शुद्ध आत्मा की भावना न करे....** अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और अनुभव न करे। **बाह्य मुनि या श्रावक के वेश को ही धर्म मान ले तो ऐसा मानना मिथ्या है। शरीर के आश्रय से जो वेश होता है, वह केवल निमित्त है, व्यवहार है, धर्म नहीं।** यह व्यवहार, धर्म नहीं है। समझ में आया?

व्यवहार क्रियाकाण्ड से या चारित्र से रागभाव-शुभभाव होने से पुण्यबन्ध का हेतु है.... लो! समझ में आया? **वह संवर और निर्जरा का हेतु नहीं.... मुमुक्षु जीव को इस बात की दृढ़ श्रद्धा रखना चाहिए कि भाव की शुद्धि भी मुनि अथवा श्रावकधर्म है....** धर्मात्मा को यह दृढ़ता से श्रद्धा में रखना चाहिए कि अन्दर में आत्मा के पुण्य-पाप के भाव बिना आत्मा की शुद्धि की भावना होना, और भाव होना, वही मुनि और श्रावकधर्म है। समझ में आया? अशुभभाव से बचने के लिए शुभभाव आता है। समझ में आया?

कोई जीव चाहे जितना ऊँचा बाह्य चारित्र पाले और किसी को चाहे जितने शास्त्रों का ज्ञान हो तो भी निश्चयधर्म के बिना साररहित है.... कहो, रतनलालजी! व्यर्थ है, एक के बिना की शून्य है, कोरा कागज। हैं?

मुमुक्षु – धर्मी की पहचान तो हो....

उत्तर – धूल में धर्मी की पहचान नहीं होती। धर्म की पहचान, धर्मी आत्मा की

पहचान शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति का अनुभव, यह धर्म की पहचान है। दया, दान, व्रत के परिणाम तो विकार हैं, वह धर्मी की पहचान नहीं है। अद्भुत, कठिन बात।

निश्चय धर्म के बिना साररहित है, चावल रहित तुष के समान है। जैसे चावल न हो और अकेला छिलका हो, छिलका कहते हैं न? तुष.... तुष। इसी प्रकार आत्मा के शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, अनुभव के बिना यह बाह्य क्रिया महाव्रत के परिणाम आदि सब व्यर्थ, व्यर्थ है। **पुण्यबन्ध कराकर संसार का भ्रमण बढ़ानेवाले हैं।** सबकी बात (की है)। वे कहें, संसार बढ़ाये? संसार बढ़ाये? फिर टीका (आलोचना करे)। आत्मा शुद्धचैतन्य प्रभु निर्विकल्प आनन्दकन्द का अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जितनी क्रिया – पंच महाव्रत आदि की दया, दान, भक्ति, पूजा की करे, वह सब पुण्यबन्ध की करनेवाली है। संसार भ्रमण बढ़ानेवाली है। उसमें तो संसार बढ़ता है – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कहो, मोहनभाई! जितना अंश वीतराग है, उतना धर्म है – ऐसा कहना है। समझ में आया?

हे आत्मा! तू इस पाप का बंध करनेवाली कल्पना को छोड़, ऐसा अहंकार न कर की मैं शूरवीर हूँ। अन्तिम बोल – दृष्टान्त है। **बुद्धिमान हूँ, चतुर हूँ, सबसे अधिक लक्ष्मीवाला हूँ....** छोड़ दे यह बात। भगवान आत्मा निराला ज्ञानानन्द है, उसे ऐसा बाहर का अभिमान किसका? बड़ा पैसेवाला हूँ, मुझे दुनिया करोड़पति मानती है, मैं **गुणवान हूँ, समर्थ हूँ, अथवा सर्व मनुष्यों में अग्र हूँ, मुनिराज हूँ.... निरन्तर निर्मल आत्मतत्त्व का ही ध्यान कर,** यह अहंकार छोड़ दे। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वभावी वस्तु का निरन्तर अनुभव कर तो मोक्ष की लक्ष्मी मिलेगी। बाह्य क्रियाकाण्ड में कुछ मिले ऐसा नहीं है। अद्भुत कठिन परन्तु.... लो! यह शीतलप्रसाद तो स्पष्ट लिखते हैं।

मुमुक्षु – व्यवहार सिद्ध करके व्यवहार को उड़ाते हैं।

उत्तर – व्यवहार सिद्ध नहीं किया? व्यवहार है, किसने इंकार किया? व्यवहार से लाभ होता है, इससे इंकार करते हैं, व्यवहार से लाभ का इंकार करते हैं। यह ४७ वीं गाथा (पूरी हुई)।

☆ ★ ☆

राग-द्वेष त्यागकर आत्मस्थ होना धर्म है

राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ॥४८॥

राग द्वेष दोऊ त्याग के, निज में करे निवास।
जिनवर भाषित धर्म वह, पञ्चम गति में वास॥

अन्वयार्थ – (राय-रोस बे परिहरिवि) राग-द्वेष दोनों को छोड़कर वीतराग होकर **(जो अप्पाणि वसेइ)** जो अपने भीतर आत्मा में वास करता है, आत्मा में विश्राम करता है **(धम्मु जिण वि उत्तियउ)** उसी को जिनेन्द्र ने धर्म कहा है **(जो पंचम गइ णेइ)** यही धर्म पंचम गति मोक्ष में ले जाता है।

☆ ★ ☆

राग-द्वेष त्यागकर आत्मस्थ होना धर्म है।

राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ णेइ॥४८॥

क्या कहते हैं ? बहुत संक्षिप्त शब्दों में संक्षिप्त कहते हैं। जो कोई आत्मा, पुण्य और पाप के, राग और द्वेष के भाव को छोड़कर.... शुभ और अशुभभाव जो राग-द्वेषमय है, वह बन्ध का कारण है, उसे छोड़कर.... **'अप्पाणि वसेइ'** जो आत्मा में बसता है। देखो ! पुण्य और पाप के भाव में बसना, वह आत्मा में बसना नहीं है – ऐसा कहते हैं। इस शुभभाव में बसना भी आत्मा का बसना नहीं है – ऐसा कहते हैं। बहुत संक्षिप्त भाषा में (कहते हैं)।

राग-द्वेष के विकल्प छोड़कर, शुभ-अशुभ की – राग की वृत्तियाँ छोड़कर **'अप्पाणि वसेइ' 'अप्पाणि'** यह त्रिकाली आत्मा है, बसना वह अन्दर स्थिरता है। आत्मा में विश्राम कर। आहा...हा... ! भगवान चैतन्यधाम अन्दर विराजमान है, पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा शाश्वत् विराजमान है आत्मा; उसमें बस, उसमें निवास कर, उसमें स्थिर हो – यह मुक्ति का उपाय है। यह योगसार है – ऐसा कहना है न ! **'वसेइ'**

यह योगसार है। जिसे भगवान, आत्मा कहते हैं, वह तो शुद्धस्वभावी वस्तु है। शुद्धस्वभावी वस्तु में बसने को योगसार कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

'सो धम्मु जिण वि उत्तियउ' इसे वीतरागी परमेश्वर ने धर्म कहा है। सर्वज्ञदेव परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था – ऐसे परमेश्वर ने आत्मा में बसने को धर्म कहा है। देखो भाषा है न? आहा...हा...! परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया है कि जितना भगवान आत्मा शुद्धभाव है, उसमें बसे, उसे उतना धर्म होता है। समझ में आया?

'सो धम्मु जिण वि उत्तियउ' वीतराग परमेश्वर ने – सर्वज्ञदेव ने यह आत्मा आनन्दमय देखा है, इस आनन्द में जितना बसे, उतना भगवान परमात्मा ने धर्म कहा है। जितना यह पुण्य और पाप में जाये, उसे भगवान ने अधर्म कहा है। आहा...हा...! अद्भुत बात! माँगीरामजी! बहुत कठिन बात, चलता है न? दिल्ली में क्या चलता है? थोड़ा चलता है – ऐसा कहते हैं।

भाई! यह एक आत्मा है या नहीं? तो आत्मा तो उसे कहते हैं कि जिसमें कर्म, शरीर और पुण्य-पाप के भावरहित चीज को आत्मा कहते हैं। आत्मा उसे कहते हैं और केवली ने उसे आत्मा कहा, परमेश्वर ने उसे आत्मा कहा है। शरीर, कर्म को तो भगवान ने अजीव कहा है। वाणी, शरीर और कर्म अजीव कहे; आत्मा में पुण्य-पाप के भाव हों उन्हें भगवान ने आस्रव-बन्ध का कारण कहा है। वे कहीं आत्मा नहीं हैं। आहा...हा...! अद्भुत बात! कठिन....। इस आस्रव के पुण्य-पाप के भावरहित त्रिकाली आत्मचीज को अकेले वीतराग-विज्ञानघन शुद्धभाव से भरपूर तत्त्व है – ऐसे शुद्धभाव में बसे, उसे शुद्धभाव प्रगट होता है। समझ में आया? जितना यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में, आवे उतना वह अशुद्धभाव है, बन्धभाव है, वह अधर्मभाव है।

मुमुक्षु – अशुद्धभाव अर्थात् बन्धभाव।

उत्तर – यहाँ तो कहा न, देखो न! दो ही भाषा है, दो ही बात है। राग-द्वेष के विकल्प शुभ हों या अशुभ हों, उन्हें छोड़कर, भगवान आत्मा अनन्त शान्त और आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु में बसे, वह भगवान आत्मा आत्मा में बसे, रहे, स्थिर हो, एकाग्र हो,

उतना शुद्धभाव प्रगट होता है, उतना भगवान ने धर्म कहा है और वह धर्म पंचम गति का कारण है। **'णेई'** है न ? पंचम गति को प्राप्त कराता है। **'णेई'** (अर्थात्) **ले जाता है।** वह धर्म पंचम गति मोक्ष को प्राप्त कराता है परन्तु बीच में यह शुभभाव दया, दान, व्रतादि, भगवान की भक्ति आदि हो भले परन्तु वे मोक्ष को पहुँचावें – ऐसी उनमें ताकत नहीं है। वे बन्ध के कारण हैं। आहा...हा... ! जैसे पाप के भाव, बन्ध का कारण हैं, वैसा ही पुण्य का भाव भी बन्ध का कारण है। उनमें बसना वह कहीं मोक्षगति में ले जाये – ऐसी उनमें ताकत नहीं है। दोनों दु:ख है, क्या कहा इन्होंने ?

मुमुक्षु – इतना मार्ग तो कटेगा....

उत्तर – जरा भी नहीं कटेगा। दोनों ही – पुण्य और पाप बन्धन के ही कारण हैं। आहा...हा... ! इसे गले उतारना (कठिन पड़ता है)।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने ज्ञान में तेरा आत्मा देखा, वह आत्मा तो पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द है। ऐसे आत्मा में अन्तर में एकाग्र होकर स्थिर होना, इसका नाम शुद्धोपयोग और शुद्धधर्म है, यह एक ही मुक्ति का कारण है; बाकी कोई मोक्ष का कारण है नहीं। आहा...हा... ! देखो न ? वे धर्म मानकर बेचारे मन्दिर और यात्रा पाँच -पाँच लाख निकालते हैं; यात्रा (करेंगे तो) मुक्ति होगी (ऐसा मानते हैं) धूल में भी नहीं होगी। राग मन्द (आवे) अशुभ से बचने के लिए शुभभाव होता है, अशुभ से बचने को शुभभाव होता है परन्तु उससे संवर-निर्जरा होवे – ऐसा है नहीं। अद्भुत बात, भाई ! तो करना किसलिए ? वह भाव आवे, भाई ! जब इसे पापभाव न हो, एक बात। शुद्धस्वरूप में स्थिरता न हो, दो बात। क्या कहा ? शुभभाव अपने आप आता है, आये बिना रहता ही नहीं। जब तक आत्मा पूर्ण वीतरागपने को न प्राप्त करे, तब तक बीच में शुभभाव आता है परन्तु वह आवे तो मोक्ष का कारण है – ऐसा नहीं है। आत्मा को शान्ति का कारण है – ऐसा नहीं है। वह शुभभाव स्वयं ही अशान्ति है। आहा...हा... ! यह देखो आया, अशुभभाव तीव्र अशान्ति, शुभभाव मन्द अशान्ति परन्तु है अशान्ति। लो, ठीक ! परन्तु अशान्ति है, उसमें जरा शान्ति नहीं है। जरा नजदीक नहीं, अशान्ति में क्या नजदीक आया।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दप्रभु अनादि-अनन्त चैतन्य ज्योत, अनादि-अनन्त

अकृत्रिम-अकृत अविनाशी – ऐसा चैतन्यप्रभु, उसके स्वभाव में तो परमानन्द और शुद्धता भरी है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर स्वरूप में बसना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र – वह आत्मा में बसना है। **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** – वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शिष्य उमास्वामी ने कहा है। **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** – यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की निर्विकल्प शुद्ध पर्याय है। यह आत्मा में बसे, वह पर्याय कहलाती है। निमित्त और राग में अटके, उसे वहाँ आत्मा में बसा – ऐसा कहाँ से आया? आत्मा में बसे, उसे आत्मा की पूर्णदशा प्रगट होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु – रोग घटे किस प्रकार?

उत्तर – परन्तु रोग घटे कब? आत्मा में रोग ही नहीं है, रोगरहित चीज और निरोगता देखे, उसमें स्थिर हो तो निरोगता प्रगट हो। १०५ डिग्री बुखार घटा और ९९ रहा, छह महीने चला तो उसे क्षयरोग की शंका पड़ेगी। ९९-९९ रहा करे, भाईसाहब! कुछ होगा, रात्रि में गर्म बहुत रहता है। रात्रि बारह बजे बाद तपता है। छह महीने तक न मिटे तो उसे यहाँ हॉस्पीटल आना चाहिए। उसे 'अमरगढ़' की हॉस्पीटल फोटो लेने आना चाहिए। क्या है? भाई! छह महीने से ९९, ९९, ९९ थोड़ा-थोड़ा रहा करता है। वह लम्बे काल रहे तो क्षय में जाये। समझ में आया? इसी प्रकार मन्दराग भी ऐसा का ऐसा कर्तृत्वबुद्धि से रहे तो वह क्षय में – मिथ्यात्व में जाता है। आहा...हा...!

धर्म तो आत्मा का निजस्वभाव है। जिनेन्द्र ने धर्म कहा, भगवान ने इसे धर्म कहा.... **धर्म अपने ही पास है....** कहीं बाहर ढूँढ़ने जाना पड़े – ऐसा नहीं है। जगत् को व्यवहार से देखना, ऐसी एक बात ली है, ठीक है। दो-तीन बातें सब ली है, ठीक है, साधारण बात है। कहो? यह ४८ गाथा (पूरी) हुई।

☆ ★ ☆

आशा-तृष्णा ही संसार भ्रमण का कारण है

आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ॥४९॥

मन न घटे आयु घटे, घटे न इच्छा भार।
नहिं आतम हित कामना, यों भ्रमता संसार॥

अन्वयार्थ – (आउ गलइ) आयु गलती जाती है **(मणु णवि गलेइ)** परन्तु मन नहीं गलता है **(आसा णवि गलेइ)** और न आशा तृष्णा ही गलती है **(मोहु फुरइ)** मोहभाव फैलता रहता है **(अप्पहिउ णवि)** किन्तु अपने आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता है **(इम संसार भमेइ)** इस तरह यह जीव संसार में भ्रमण किया करता है।

☆ ★ ☆

४९ – **आशा-तृष्णा ही संसार भ्रमण का कारण है।**

आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ॥४९॥

कहते हैं, अरे! आत्मा, आयु तो बीती जा रही है। भाई! जो कुछ आयु लेकर आया – ८०-८५-९०-१००, यह आयुष्य तो बीता जा रहा है, बापू! आयुष्य गलता है परन्तु तेरी तृष्णा नहीं गलती। आहा...हा...! है न? **आयु गलती जाती है परन्तु मन नहीं गलता है....** आहा...हा...! क्योंकि जहाँ पर की भावना है, उसमें मन गले किस प्रकार? आत्मा आनन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान के बिना तृष्णा नहीं घटती। अज्ञानी को, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ.... पुण्य-पाप करूँ, पुण्य-पाप करूँ, पुण्य-पाप करूँ.... यह तृष्णा चलती जाती है।

न आशा, तृष्णा गलती है। बड़ा हुआ ऐसे अन्दर गहरे-गहरे आशा बढ़ती ही जाती है, उस आशा का छोर लम्बा होता है। आशा का बीज बोया हो और फिर बड़ा हो, वृद्ध हो, तो हो गया, कर सके नहीं फिर झपट्टे मारे, अन्दर विचार के झपट्टे मारे, इसका ऐसा होवे तो ठीक.... इसका ऐसा होवे तो ठीक। अब कुछ कर सकता नहीं ठीक हो या न ठीक हो, तुझे क्या काम? आत्मा का ठीक हो तो तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? आशा, तृष्णा गलती नहीं है।

मोहभाव फैलता रहता है। भगवान आत्मा के स्वरूप की श्रद्धा और भान बिना

यह करूँ.... ऐसा कहना चाहते हैं। यह पर तरफ का यह करूँ, यह करूँ इसमें तो तृष्णा बढ़ जाती है। इसमें कहीं आत्मा को एकाग्र होने का प्रसंग नहीं है। आहा...हा...! आनन्दघनजी ने कहा है न 'आशा औरन की क्या कीजै? आशा औरन की क्या कीजै? ज्ञान सुधारस पीजै, आशा औरन की क्या कीजै?' समझ में आया? 'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी' कूकर आशा – कुत्ता होता है न? कुत्ता। 'भटकत द्वार-द्वार लोकन के' भूख लगे (इसलिए) बाहर में जहाँ-तहाँ भटकता है। दरवाजा हो वहाँ सिर मारता है। ऐ... टुकड़ा देना, ऐ... टुकड़ा देना, ऐ... टुकड़ा देना, इसी प्रकार यह मूढ़ जहाँ हो वहाँ मान देना, मुझे बड़ा कहना, मुझे मान देना, मुझे बड़ा कहना, मुझे अच्छा कहना, मैं ऊँचा हूँ – ऐसा कहना। इस आशा तृष्णा के टुकड़े माँगने में भिखारी (की तरह) भ्रमण किया करता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – मैं बड़ा हूँ – ऐसी आशा रखे, कहने न जाये।

उत्तर – कहने जाये, जुलूस निकाले उसे कहने जाये। दो-चार तो व्यक्तिगत कहना, हाँ! मैं यहाँ से जाता हूँ और जुलूस तैयार करना, मेरा नाम मत लेना। समझ में आया? और पैसा चाहिए हो तो मैं दूँगा.... दो सौ-तीन सौ चाहिए हो तो मैं दूँगा परन्तु जुलूस निकालना, जुलूस सब इकट्ठे होवें और बहुत लोग हों, मैं तो उसके योग्य नहीं था परन्तु मुझे तुमने यह सम्मान दिया, यह तुम्हारा बड़प्पन है – ऐसा कहकर एक-दूसरे को मक्खन लगाते हैं। हैं? मैं तो इस योग्य नहीं था परन्तु यह तुम्हारा बड़प्पन है कि तुम दूसरे को मान देते हो। वे भी प्रसन्न हों और यह भी प्रसन्न हो जाता है। जा मरो दोनों! बनता है न ऐसा। ऐ...ई...! यह उल्टा बनता है ऐसा। अन्य को गुप्तरूप से कहे, देखो भाई! इतना करना, हाँ! मेरी प्रतिष्ठा बड़े इतना थोड़ा रखना। तुम मित्र हो न! स्वयं नहीं कहे, मित्र से कहलावे, जगत में ऐसा होता है। भिखारी हैं, रंक हैं, पागल! दुनिया से सम्मान लेना चाहते हैं। यह राजा, महाराजा, सब भिखारी हैं। समझ में आया? भले करोड़-करोड़ की जागीर कहलाये (परन्तु) रंक के रंक हैं, भिखारी में भिखारी है। हमें बड़ा कहो, हम राजा हैं, हमें बड़ा गिनो।

एक बार हमने देखा था न! पालीताना दरबार था न, क्या (नाम) था? वे मर गये

हैं, बहादुरसिंहजी ! हम (संवत्) २००६ की साल में बाहर निकले थे न ? जाने के लिए, रास्ते में किसानों को ऐसा मनवावें; उस समय गाँधी का जोर था न ? उसमें खड़े थे, नहीं ? उस गाँव में.... तुम नहीं थे, नहीं ? तुम नहीं थे न ? कब कौन सी तिथि और काल की बात नहीं, तब यह था या नहीं इतनी बात है, उसकी लाईन अलग है, वहाँ आगे वे दो घोड़े में खड़े थे और दो घोड़े खड़े हों उसे कहते थे, समझे न ? ए... पटेलों ! ऐसा मत करना, ए... पटेलों ! ऐसा मत करना। वे सबको कहते थे। अरे... ! कहा, यह भी भिखारी है। समझ में आया ? भिखारी है, यह रंक है, कहा।

कहते हैं, आहा...हा... ! ४९ हैं न यह.... आयु गलती है और तृष्णा गलती नहीं। आयु बीते वैसे तृष्णा बढ़ जाती है। समझ में आया ? **'मोहु फुरइ'** और मोहभाव फैलता जाता है। **'अप्पाहिउ णवि' परन्तु अपनी आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता।** आहा...हा... ! समय चला जाता है सारा। मान में सम्मान में, बड़प्पन में... यह किया और यह मुझे माना और इसने बड़ा किया.... (जीवन) इसी में चला गया। आत्मा का हित करने का काल सब चला गया। इसका है न ? वह गुजराती है न ? क्या है गुजराती ? गुजराती है या नहीं ? कितने का है यह ? ४९, इसमें ४८ होगा, इसमें थोड़ा अन्तर है, हाँ ! एक का अन्तर है।

मन न घटे आयु घटे, न घटे इच्छा-आश।
तृष्णा मोह सदा बढ़े, इससे भ्रमता खास॥ ४९॥

बहुत श्लोक किये हैं।

आयु गले मन ना गले, इच्छा आशा न गलंत।
तृष्णा मोह सदा बढ़े, या ही भव भटकंत॥ ४८॥

हिन्दी है। यहाँ तो ऐसा कहना है, राजा और भिखारी पर से कुछ महिमा चाहते हैं, उनकी तृष्णा बढ़ती जाती है और मोह की स्थूलता बढ़ जाये व आत्मा का हित उन्हें सूझता नहीं। ऐसा मानो कि हम बढ़ गये-बड़े हो गये, ऐसे हुए-ऐसे हुए। आहा...हा... ! समझ में आया ? लड़का अच्छा हुआ, फिर आमदनी करने में बढ़े.... मूढ़ मानता है हम बढ़े किसके बड़े ?

श्रीमद् ने नहीं कहा 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये ?' लक्ष्मी बड़ी – दो करोड़-पाँच करोड़, धूल करोड़.... 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये ?' सोलहवें वर्ष में कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र सोलह वर्ष में (कहते हैं), सात वर्ष में जातिस्मरण था, यह श्रीमद् राजचन्द्र.... १९५७ में देह छूट गया, सात वर्ष में जाति स्मरण-पूर्वभव का ज्ञान था, सोलह वर्ष में मोक्षमाला बनायी, उसमें ऐसा कहते हैं।

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये ?
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तोलिये ?
संसार का बढ़ना अरे नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक-विचार है।

लक्ष्मी बढ़ी, दुकानें बढ़ी, वह क्या कहलाता है तुम्हारा ? मुख के आगे बैठा हो उसे क्या (कहते हैं) ? मुनीम ! मुनीम बढ़े यह बढ़े धूल भी नहीं बढ़ी, सुन न ! भटकने का बढ़ा है।

मुमुक्षु – दिखता तो है।

उत्तर – दिखता है न ! भटकने का बढ़ा, हैरान... हैरान हो गया है। देखो न ! पता नहीं पड़ता ? है ? आहा...हा... ! अरे ! मुम्बई जाये तो इसका लड़का इसके साथ बात नहीं करे, इससे कहे बापू ! अभी मुझे फुरसत नहीं है। यह जाये तो कहे बापू ! मुझे अभी फुरसत नहीं है, हाँ ! बैठो ! जाओ घर पर खाकर आना, मैं फुरसत में होऊँगा तो तुम्हारे साथ खाने आऊँगा। इसकी फुरसत नहीं होती। यहाँ तो कहते हैं कि बाहर के साधन बढ़ने से बढ़ा हुआ मानना, यह परिभ्रमण के कारण में बढ़ा है, फँसने के कारण में (बढ़ा है)। नर देह, ऐसा मनुष्य देह मिला.... आहा...हा... ! मुश्किल से जन्म-मरण-जरा को मिटाने का यह भव है, भव को मिटाने का भव है – ऐसे भव को बढ़ाने का साधन बढ़ा परन्तु आत्मा का हित स्फुरित नहीं होता – ऐसा कहते हैं। देखो, है न ? **अपने आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता।** समझ में आया ? आहा...हा... ! चक्रवर्ती जैसी सम्पत्ति और बहुत बात ली है।

यहाँ अन्तिम शब्द आत्मानुशासन का है। **मनुष्य सदा शरीर का पोषण करता**

है और विषयभोग भोगता रहता है, इससे अधिक खराब काम दूसरा क्या होगा ? वह विष पीकर जीवन चाहता है। जहर पीकर जीवन चाहता है। भगवान अमृत के आनन्दकन्द में अन्दर डूबे नहीं, अन्दर में आवे नहीं और बाहर में भटकाभटक भटका करता है, वह जहर पीकर जीवन चाहता है। तृष्णा बढ़ जाये, मरने तक तृष्णा बढ़ जाये, जाये नहीं वापस, वापस फिरे नहीं। क्यों हरिभाई ? फिर भाई की भी माने नहीं।

इसलिए कहते हैं कि इस सब तृष्णा को छोड़ और भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान, अनुभव कर। इसमें तेरे कल्याण का पन्थ है। बाकी दूसरी जगह कल्याण नहीं है-सब अकल्याण है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वात्सल्यमूर्ति मुनिराज के सम्बोधन के उपाय

जैसे माता बालक को शिक्षा दे, तब कभी ऐसा कहती है कि बेटा तू तो बहुत सयाना है.... तुझे यह शोभा देता है ? और कभी ऐसा भी कहती है कि तू मूर्ख है, पागल है; इस प्रकार कभी मधुर शब्दों से शिक्षा देती है तो कभी कड़क शब्दों से उलाहना देती है, परन्तु दोनों समय माता के हृदय में पुत्र के हित का ही अभिप्राय है। इसीलिए उसकी शिक्षा में भी कोमलता ही भरी है।

इसी प्रकार धर्मात्मा सन्त बालकवत् अबुध शिष्यों को समझाने के लिए उपदेश में कभी मधुरता से ऐसा कहते हैं कि हे भाई! तेरा आत्मा सिद्ध जैसा है, उसे तू जान! और कभी कठोर शब्दों में कहते हैं कि अरे मूर्ख! पुरुषार्थहीन नपुंसक! अपनी आत्मा को अब तो पहचान! यह मूढ़ता तूझे कब तक रखनी है ? अब तो छोड़!

इस प्रकार कभी मधुर सम्बोधन से तो कभी कठोर शब्दों से उपदेश देते हैं, परन्तु दोनों प्रकार के उपदेश के समय उनके हृदय में शिष्य के हित का ही अभिप्राय है; इसलिए उनके उपदेश में कोमलता ही है, वात्सल्य ही है। — *पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी*